# गबन : अन्तर्पाठों की गहन संरचना

## हिन्दी विभाग, दुर्गा महाविद्यालय रायपुर (छ.ग.)

**डॉ. लोकेश्वर प्रसाद सिन्हा**

प्रेमचंद
गबन

मुंशी प्रेमचंद को आधुनिक हिंदी का पितामह कहा जाता है। मुंशी जी को उपन्यास सम्राट भी कहा जाता है। उनका जन्म 31 जुलाई 1880 को बनारस से थोड़ी दूर लमही नामक गाँव में हुआ था। आपके पिता अजायब राय एक डाकखाने में नौकरी करते थे। प्रेमचंद उस समय मात्र 8 वर्ष के रहे होंगे जब इनकी माँ का देहांत हो गया। बाल्यावस्था में ही इनके ऊपर जिम्मेदारियों का बोझ आ पड़ा। आपका पहला विवाह मात्र 15 वर्ष की आयु में हो गया था। जो सफल नहीं रहा। विवाह के एक वर्ष बाद ही पिता का देहांत हो गया।

उर्दू और हिन्दी से मुंशी जी का विशेष लगाव था। मात्र 13 वर्ष की उम्र में ही उनके साहित्यिक जीवन का आरंभ हो चुका था। उन्होंने कुल 15 उपन्यास, 300 से अधिक कहानियाँ, 3 नाटक, अनुवाद, बाल-पुस्तकें तथा हजारों पृष्ठों के लेख, सम्पादकीय, भाषण, भूमिका, पत्र आदि लिखे।

प्रेमचंद के मुख्य उपन्यास हैं - कर्मभूमि, निर्मला, गोदान, गबन, अलंकार, प्रेमा, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, प्रतिज्ञा। 8 अक्टूबर 1936 को सरस्वती का ये पुत्र सदा के लिए इस दुनिया को अलविदा कह गया।

# ग़बन : अन्तर्पाठों की गहन संरचना

प्रेमचन्द ने बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखे एक पत्र में अपनी आकांक्षा व्यक्त करते हुए कहा था, "इस समय तो सबसे बड़ी आकांक्षा यही है कि हम स्वराज्य-संग्राम में विजयी हों। धन या यश की लालसा मुझे नहीं रही... हाँ, यह जरूर चाहता हूँ कि दो-चार उच्च कोटि की पुस्तकें लिखूं, पर उनका उद्देश्य भी स्वराज्य-विजय ही हो।" लेकिन, क्या यह स्वराज्य केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित है? अपने एक प्रसिद्ध निबन्ध 'स्वराज्य के फ़ायदे' में स्वराज के तात्पर्य को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं : 'स्वराज्य पाकर हम अपनी आत्मा को पा जाएँगे," इसलिये यह स्वाभाविक लगता है कि प्रेमचन्द की साहित्य-साधना और उनके कृतित्व को स्वराज्य की उनकी व्याख्या 'अपनी आत्मा को पा लेना' के सन्दर्भ में पढ़ा और देखा-परखा जाना चाहिए। प्रेमचन्द की अपनी आकांक्षा तो कम से कम यही होगी।

क्या 'ग़बन' को भी इस सन्दर्भ में पढ़ा-परखा जा सकता है? सामान्यतः 'ग़बन' को एक नव-विवाहित दम्पति जालपा और रमानाथ के आभूषण-प्रेम तथा फ़ैशनपरस्ती तथा उनके परिणामस्वरूप कर्जदार होते चले जाने और सरकारी धन के दुरुपयोग से घबराकर घर से भाग जाने और एक भयभीत जीवन बिताने की कथा के तौर पर ही समझा जाता रहा है। इसी भय के कारण पुलिस की गिरफ़्त में आने पर वह झूठी गवाही देने के लिए तैयार हो जाता है। पुलिस के संरक्षण में विलासिता की उसकी वृत्ति फिर सर उठाने लगती है और भय तथा लोभ के वशीभूत वह अदालत में झूठी गवाही दे देता है, जिसका परिणाम निर्दोष लोगों को सज़ा मिलना है। अन्त में, अपनी पत्नी जालपा से प्रेरणा पाकर वह सच बोल देता है। 'ग़बन' की केन्द्रीय कथा यही है। लेकिन, प्रेमचन्द ने इस कथा को बहुत सहजता से इस तरह गूँथा है कि प्रेमचन्द के केन्द्रीय सरोकार 'अपनी आत्मा को पा जाने' की सिद्धि पाठकीय मन तक सम्प्रेषित हो जाती है।

यह याद दिलाने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए कि प्रेमचन्द का रचना-काल महात्मा गाँधी के नेतृत्व में किये जा रहे हमारे स्वराज्य संघर्ष का काल भी है। महात्मा गाँधी के लिए 'स्वराज' केवल राजनीतिक स्वाधीनता नहीं था। 1909 ई. में ही 'स्वराज' का तात्पर्य स्पष्ट करते हुए महात्मा गाँधी ने लिखा था कि "अपने मन पर शासन करना" स्वराज है तथा उसकी कुंजी 'सत्याग्रह' ही आत्मबल और करुणा-बल है। वह मानते हैं कि उस बल को आजमाने के लिए 'स्वदेशी को अपनाने' की

जरूरत है। महात्मा गाँधी यह भी मानते हैं कि स्वेच्छापूर्वक कष्ट सहन के माध्यम से ही बंधन मुक्त हो सकते हैं।

इस बात की ओर हिन्दी आलोचना ने कम ध्यान दिया है कि प्रेमचन्द ने अपने कथा संसार में इन सभी आयामों को बहुत कलात्मक विधि से अन्तर्गभित कर दिया है और 'ग़बन' उनकी इस कला का एक उल्लेखनीय उदाहरण है। यदि प्रेमचन्द का प्रयोजन आभूषण-प्रेम और फ़ैशनपरस्ती का विरोध करना ही होता तो कथा जालपा द्वारा सरकारी धन को वापस कर देने के साथ ही समाप्त हो गयी होती - अधिक से अधिक रमानाथ को दो-चार दिन के लिए पुलिस की हिरासत में दिखा दिया जाना पर्याप्त होता। लेकिन, इस कथा में जालपा और अन्ततः रमानाथ के साथ अन्य कई पात्र जोहरा, देवीदीन, जग्गो आदि बन्धन-मुक्त होकर अपनी आत्मा को पा जाते हैं। उसके आभूषण-प्रेम के कारण रमानाथ का कर्ज़दार होना, झूठ बोलना तथा सरकारी धन का दुरूपयोग करने तथा लज्जित होकर भाग जाने के कारण जालपा गहरे अर्न्तदाह से गुज़र कर निखर आती है। उसका यह निखरना उसे उपन्यास 'ग़बन' का केन्द्रीय पात्र बना देता है और यह उपन्यास नायक-प्रधान होने के बजाय नायिका-प्रधान हो जाता है। वह अपने सीमित 'स्व' से उबरकर न केवल रमानाथ को रास्ते पर लाती है बल्कि स्वयं को दुखी लोगों की सेवा में अर्पित कर देती है। इस करुणा में रहना ही 'स्वराज' में रहना है।

जोहरा एक वेश्या है और पुलिस द्वारा रमानाथ को बहलाने के लिए उसे नियुक्त किया गया है लेकिन, जालपा से मिलकर उसे भी अपने काम से ग्लानि होती है तथा अन्ततः वह उससे उबर कर अपने को सत्य के पक्ष में खड़ा करती है तथा अदालत में पुलिस के षड्यंत्र की पोल खोल देती है। अन्त में भी वह डूब रही एक स्त्री और उसके बच्चों को बचाने की कोशिश में अपने प्राणों की बाजी लगा देती है। इससे बड़ा आत्मत्याग क्या हो सकता है? तो क्या हम जितना आत्मत्याग करने को प्रस्तुत होते हैं, उतना ही अधिक अपनी आत्मा को पा जाते हैं!

रमानाथ को झूठी गवाही देने के लिए तैयार करने के प्रकरण में प्रेमचन्द ने पुलिस के हथकंडों को भी बड़ी कुशलता से उजागर कर दिया है। साम, दाम, दण्ड, भेद द्वारा पुलिस किस तरह अपनी उद्देश्य-पूर्ति के लिए निर्दोष लोगों को फंसाती है, इसका यथातथ्य विवरण प्रेमचन्द ने इस उपन्यास में कर दिया है। झूठी गवाही देने के लिए तैयार करने के वास्ते पुलिस रमानाथ को प्रलोभन देती, उसकी विलासप्रियता को बढ़ाती और बीच-बीच में भय का इस्तेमाल कैसे करती है और अन्त में अदालत में पोल खुल जाने पर किस तरह बड़े अधिकारी सारी तोहमत छोटे अधिकारियों के सर मढ़ देते हैं, यह सब भी बड़े प्रभावी ढंग से व्यक्त किया गया है।

उपन्यास में 'स्वदेशी' के प्रकरण को भी बड़ी कुशलता से गूँथ दिया गया है। जब देवीदीन रमानाथ के लिए कपड़े लाता है तो वे विदेशी नहीं बल्कि स्वदेशी वस्त्र

हैं। रमानाथ के यह पूछने पर कि सस्ते मिलने वाले विदेशी कपड़ों के बजाय देवीदीन महंगे स्वदेशी वस्त्र क्यों लाया है, देवीदीन का उत्तर है : "कुछ वेसी दाम लग जाता है, पर रुपया तो देश में ही रह जाता है... जिस देश में रहते हैं, जिसका अन्नजल खाते हैं, उसके लिए इतना भी न करें तो जीने को घृणा है।" उसके दो बेटे इसी स्वदेशी आन्दोलन की बलि चढ़ चुके हैं। यह उपन्यास का मुख्य प्रकरण नहीं है पर मूल पाठ में अन्तर्पाठों को विकसित करने की यह कला प्रेमचन्द को हमारी पौराणिक और लोक-परम्परा दोनों से मिली है क्योंकि ये दोनों ही परम्पराएँ केन्द्रीय कथानक में अन्तर्कथानकों को इस तरह बुन देती है कि एक ओर उनका स्वतंत्र अस्तित्व भी बना रहता है और, दूसरी ओर वे केन्द्रीय कथा और उसके मूल प्रयोजन को आगे बढ़ाती तथा उसे और घना एवं संकेन्द्रित कर देती है। 'स्वदेशी' के प्रकरण को 'ग़बन' की मूल कथा में अन्तयोजित कर प्रेमचन्द ने 'स्वदेशी' के माध्यम से 'स्वराज' के मन्तव्य को ही घना किया है - वह भी अत्यन्त सहजता के साथ नामालूम तरीक़े से। इसी प्रकरण के साथ वह 'स्वराज' की अवधारणा को भी गूँथ देते हैं। देवीदीन के वक्तव्य के माध्यम से प्रेमचन्द मानो आज के भारत के यथार्थ को ही एक भविष्य-दृष्टा की तरह देख रहे हैं। देवीदीन कहता है "साहब, सच बताओ जब तुम सुराज का नाम लेते हो तो उसका कौन-सा रूप तुम्हारी आँखों के सामने आता है? तुम भी बड़ी-बड़ी तलब लोगे, तुम भी अंग्रेजों की तरह बंगलों में रहोगे, पहाड़ों की हवा खाओगे, अंग्रेजी ठाठ बनाये घूमोगे, इस सुराज से देश का क्या कल्याण होगा? तुम्हारी और तुम्हारे भाई बन्दों की ज़िन्दगी भले आराम से गुज़रे पर देश का कोई भला न होगा।"

प्रेमचन्द के उपन्यासकार की एक खूबी यह भी है कि चरित्रों की बहुलता होते हुए भी 'ग़बन' के प्रत्येक चरित्र का अपना वैशिष्ट्य है, कोई भी चरित्र 'टाइप' नहीं लगता और कथा के विकास के साथ-साथ ही उनका विकास होते रहने के कारण पाठक उनके साथ एक स्वाभाविक अन्तरंगता महसूस करने लग जाता है। चरित्रों के अन्तर्द्वन्द्वपूर्ण मनोविज्ञान को भी प्रेमचन्द ने बहुत कुशलता से उकेरा है। जालपा को गहनों से प्रेम है, लेकिन अपनी माँ के भेजे गये चन्द्रहार को स्वीकार करना उसके स्वाभिमान को स्वीकार नहीं होता, क्योंकि वह जानती है कि उसकी माँ ने हार अपनी खुशी से नहीं भेजा है और उसे वापस पाकर उन्हें अच्छा ही लगेगा। माँ के इस हार भेजने को वह 'दान' समझती है क्योंकि वह प्रेम से नहीं बल्कि दिल पर जब्र करके दिया गया है और 'दान' लेना जालपा को मंजूर नहीं है। वह आभूषणों के प्रति अत्यन्त आकर्षित है, लेकिन उसका वास्तविक प्रेम तो अपने पति के प्रति है - इसलिए नहीं कि वह उसे गहने ला देता है। सच कहा जाये तो रमानाथ का जालपा के प्रति प्रेम उसके रूप-लावण्य के कारण है और जालपा भी कहीं यह समझती है क्योंकि रमानाथ उसे अपने अन्तरंग का साझीदार नहीं बनाता। वह कहती भी है : "मुझसे प्रेम होता तो मुझ पर विश्वास भी होता। बिना विश्वास के प्रेम हो ही कैसे

सकता है? जिससे तुम अपनी बुरी से बुरी बात न कह सको, उससे तुम प्रेम नहीं कर सकते। हाँ, उसके साथ विहार कर सकते हो, विलास कर सकते हो। उसी तरह जैसे कोई वेश्या के पास जाता है। वेश्या के पास लोग आनन्द उठाने ही जाते हैं, कोई उससे मन की बात करने नहीं जाता। हमारी भी वही दशा है।" लेकिन, इसके बावजूद जालपा अपने पति के झूठी गवाही देने के पाप का प्रायश्चित करने के लिए उसके कारण दुखी परिवार की सेवा में अपने को अर्पित कर देती और रमानाथ को सत्य के रास्ते पर लाने का प्रयत्न करती है। उसका यही त्याग एक वेश्या जोहरा को भी रूपान्तरित कर देता है। अपने आभूषणों को, जिसके लिए उसे अपार आकर्षण था, नदी में फेंक कर वह इतना 'गर्व और आनन्द' अनुभव करती है, जितना उसे उन्हें पाकर भी नहीं हुआ था। प्रेमचन्द इस घटना पर लेखकीय टिप्पणी करते हैं : "उस असंख्य प्राणियों में जो इस समय स्नान-ध्यान कर रहे थे, कदाचित किसी को अपने अन्तः करण में प्रकाश का ऐसा अनुभव न हुआ होगा। मानो प्रभात की सुनहरी ज्योति उसके रोम-रोम में व्याप्त हो रही थी।" यह ज्योति रूप लावण्य की नहीं, नैतिक अन्तश्चेतना की है, जो जालपा के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को रुपान्तरित कर देती है, उसे सत्य और त्याग के पथ का यात्री बना देती है। प्रकारान्तर से यह रमानाथ के प्रति उसके प्रेम की ही अभिव्यक्ति है, जो उसकी झूठी गवाही से नाराज एवं दुखी होने के बावजूद उसके पापों का प्रायश्चित स्वयं कष्ट उठा कर करना चाहती है।

जालपा में एक दृढ़ता प्रारंभ से है, लेकिन, रमानाथ मूलतः एक कमज़ोर चरित्र है, जो बार-बार भय, लोभ और विलासिता में पड़ता है। उसकी अन्तश्चेतना वास्तव में तभी जागती है, जब वह उस जालपा के कष्ट-सहन और त्याग को देखता है, जिसे वह विलासिनी समझता था। वस्तुतः जालपा केवल रमानाथ के किये ग़बन को ही नहीं चुकाती, बल्कि उसकी उस आत्मा को भी पुनर्अर्जित कर लेने में सफल हो जाती है - अपने आत्मबल और प्रेमबल के माध्यम से - जिसका ग़बन रमानाथ के लोभ और भय ने कर लिया था। उपन्यास के अन्य चरित्रों और उन को उद्घाटित करने वाले कथा-प्रसंगों को भी भुला देना, किसी पाठक के लिए संभव नहीं है - चाहे वह चरित्र रतन का हो या जोहरा, देवीदीन और जग्गो का - यहाँ तक कि पुलिस दरोगा का भी।

ग़बन की कथा दिखने में बड़ी सरल है तथा अपने प्रवाह और पठनीयता के साथ-साथ इतने चरित्रों के जीवन, अन्तर्कथाओं और अन्तर्पाठों को बुन देना ही उस औपन्यासिक प्रतिभा का प्रमाण है, जिसे हिन्दी साहित्य 'उपन्यास-सम्राट' कहता है।